

प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास : बाजारवाद और उपभोक्तावाद के परिप्रेक्ष्य में

Dr. Reetu Rani

Assistant Professor, Department of Hindi, Govt. College Ambala Cantt, Haryana, India

सारांश

भूमण्डलीकरण के इस दौर में जीवन के हर क्षेत्र में नैतिकता का ह्रास हो रहा है और सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ईमानदारी जैसे शाश्वत मूल्य हाशिए पर ढकेल दिए गए हैं। भूमण्डलीकरण का एकमात्र पुरुषार्थ है— 'अर्थ' और एकमात्र धर्म या नैतिकता है — 'मुनाफा'। बाजारवाद व उपभोक्तावाद मानवतावाद के सर्वथा प्रतिकूल हैं। भूमण्डलीकरण का बाजारतंत्र है जो बाजार की आवश्यकता देखता है, मुनाफे के लिए कुछ भी करता है। समाज में आपसी लेन-देन एवं आदान-प्रदान के लिए एक बाजार जरूरी है। लेकिन आज इस बाजार में संवेदना और मूल्य की जगह माल, मुद्रा आदि ने ले ली है, यानि हमारे सामने और बीच भी व्यावसायिकता रह गई है। आज का मानव व्यावसायिकता के समुद्र में भोगवृत्ति और भोगवाद के सहारे अब डूब रहा है। मानवीय मूल्य पहले ही डूब चुके हैं, उसकी संवेदनशीलता तो रसातल में जा चुकी है। इन सभी स्थितियों का प्रभावशाली अंकन प्रस्तुत शोध-पत्र में किया गया है।

मूल शब्द: भूमण्डलीकरण, बाजारवाद, उपभोक्तावाद।

प्रस्तावना

वर्तमान समय में आर्थिक उदारीकरण ने उपभोक्तावाद, बाजारवाद व्यवस्था को शक्ति प्रदान की है। उपभोक्तावाद और बाजारवाद तथा उत्तर-आधुनिकता के संदर्भ में कुछ उपन्यास उल्लेखनीय रहे हैं, जैसे— सुरेन्द्र वर्मा का 'मुझे चाँद चाहिए', ममता कालिया का 'दौड़', अलका सरावगी का 'एक ब्रेक के बाद' रवीन्द्र वर्मा जी का 'दस बरस का भँवर आदि। इन उपन्यासों में विश्व पूँजी व्यापार में उपभोक्तावाद का बढ़ता प्रसार, वैश्वीकरण की सौगात के रूप में अपसंस्कृति के अनेकशः रूप और प्रकार, अमेरिकीकरण और ब्रांडेड संस्कृति में नई पीढ़ी का ढलते चले जाना आदि महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाया गया है।

मार्क्स का समय औद्योगिक पूँजीवाद का समय था। आज बहुराष्ट्रीय निगमों वाले पूँजीवाद का समय है। मार्क्सवादी चिन्तक अर्नेस्ट मैडल ने 'लेट-कैपीटलिज्म' शीर्षक अपनी पुस्तक में कहा है कि हमें पूँजी के नए-नए रूपों की पुनर्व्याख्या करनी होगी। क्योंकि पूँजी का अर्थ बदल रहा है। हालत यह हो गई है कि पूँजीवाद 'विश्व-बाजार' या विश्व-बाजारवाद की स्थिति तक पहुँच गया है। उसी ने नई तकनीकी क्रान्ति को संभव बनाया है और उसी ने पूरी गति के साथ 'बहुराष्ट्रीय निगमों की सत्ता' को बाजार के वर्चस्ववाद में स्थापित कर लिया है। 'लेट-कैपीटलिज्म' पूँजी का वह 'अति रूप' है जो तकनीकी क्रान्ति का नक्शा बदलता है और बनता है। पूँजी का निर्माण करता है और उत्पादकता की गति को बेहद तीव्र कर देता है। यह घर में फास्टफूड, सिले हुए आकर्षक वस्त्र, वाशिंग मशीन पहुँचाकर 'सेवा' करता है। टूरिज्म, संचार, सूचना-उद्योग सभी 'सेवा' के उद्योग हैं। इसलिए उपभोक्तावाद एक नवीन उपयोगिता-क्रान्ति के सुरक्षित रहकर अपना प्रभाव विस्तार करता है। विज्ञापन की 'भाषा' को बदल देता है और नए ग्राहक तैयार करता है। बाजार में नई-नई उपभोग सामग्री की बाढ़ आ जाती है।¹

'सर्वमंगल मांगल्ये पूँजी सर्वार्थ साधिके' के सूत्र को उत्पादक और उपभोक्ता दोनों मिलकर आजमा रहे हैं। बाजारवाद का सबसे बड़ा अस्त्र है— विज्ञापन। "विज्ञापन बाजारवाद की सबसे महत्वपूर्ण विधा

है, एक उपभोक्ता समाज बनाया, जहाँ उत्पादकता और स्पर्धा ने पारिवारिक सम्बन्धों के समीकरण बदल दिए और सम्बन्धों की सहजता नष्ट कर दी। परिवार के सम्बन्धों की स्थिरता और निरन्तरता का निर्णय विशेष कम्पनी के सूटकेस और वार्डरोब करते हैं। आपसी सम्बन्धों का सौन्दर्य विभिन्न प्रकार की क्रिम, तेल, इत्र, घडियाँ, शैम्पू, खाने-पीने पहनने की चीजें, वनस्पतियाँ और साबुनों इत्यादि द्वारा निर्धारित होता है। आज इन संचार माध्यमों और विज्ञापनों ने हमारे समाज को एक बड़े बाजार में बदल दिया है।²

पूँजीवाद के तीसरे चरण में मीडिया एवं विज्ञापन की संस्कृति की ताकत पर आश्चर्यजनक रूप से निर्भर है। बहुराष्ट्रीय निगमों वाले पूँजीवाद ने अपने राजनीतिक, आर्थिक सिद्धान्तों, विचारों, प्रवृत्तियों, मूल्यों और मन्तव्यों आदि को जनता के दिमाग में ठोक-पीटकर बैठाने के लिए बहुत बारीक मनोवैज्ञानिक औजार विकसित किए हैं। विज्ञापन एजेंसियाँ किस तरह मनोविज्ञान का असरकारी उपयोग न केवल अपने माल की खपत बल्कि विचारों, आचार-व्यवहार, उद्देश्य यहां तक की भाव एवं मनोदशाओं में वशीभूत रखने में करती है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एरिक फ्रॉम ने लिखा है कि विचार, भावना और सौन्दर्यवाद सभी आज इसी भावना से काम कर रहे हैं। उन्होंने लिखा है, "जनसंचार माध्यमों की वृद्धि के कारण आज व्यक्ति बहुत तेजी से यह सीख लेता है कि कौन-से विचार 'उचित' हैं, कैसा आचरण 'सही' है, कौन-सी भावनाएँ 'उपयुक्त' है, कैसा रुचिबोध 'प्रचलित' है। उसे सिर्फ मीडिया के संकेतों को ठीक-ठीक पकड़ते रहना है और यह सुनिश्चित हो सकता है कि उससे गलती नहीं होगी। फैशन पत्रिकाएँ उसका परिधान तय कर देंगी, पुस्तक क्लब या पाठक मंच उसके पढ़ने के लिए उचित पुस्तकों का निर्धारण कर देंगे और अब तो हालात यहां तक आ पहुँचे हैं कि वैवाहिक जोड़े तय करने के लोकप्रिय हो रहे तरीके भी कम्प्यूटरी कुण्डली के निर्णयों पर आधारित हैं। हमारे जमाने में ईश्वर का विकल्प भी ढूँढ़ निकाला है।"³

उपभोक्तावादी पूँजीवादी ने संस्कृति को अपसंस्कृति में बदल दिया है। अर्थक्षेत्र और संस्कृति क्षेत्र एक हो गए हैं। संस्कृति भी एक उत्पाद बन गई है। उपभोक्ता संस्कृति के पसरने से सैक्स की

विकृति हो ही बढ़ावा मिला है। सारा मध्यवर्ग आज भौतिकता की जिस दौड़ में पड़कर एक विशिष्ट वर्ग में छलांग लगाने की जद्दोजहद में पड़ा हुआ है। भौतिकतावादी दृष्टि, उपभोक्तावाद, बाजार, बाजार की ब्रांडिड संस्कृति इन्हें क्रेजी बना रही है और बाजार इन्हें भड़काता है।

इन सब स्थितियों का चित्रण रवीन्द्र वर्मा जी ने अपने उपन्यास 'दस बरस का भँवर' में किया है। उपन्यासकार रवीन्द्र वर्मा जी ने उपन्यास में दर्शाया है कि उपभोक्ता संस्कृति उच्च जीवन स्तर को ना काफी मानती है और सवाल खड़ा करती है कि और अच्छा क्यों नहीं। फैशन सजगता उत्पन्न करना और सबसे महंगे व बढ़िया माल या ब्राण्ड की उपलब्धता की ललक पैदा करना बाजारवाद के मूल पोषक हैं। छोटे से छोटे बच्चे को भरमा रही है, नूर और अमर का बेटा मुन्ना सोलह सौ रूपयों के जूतों की मांग करता है। मध्यवर्गीय परिवार भी मारुति और उससे भी बढ़िया गाड़ियों की कतार देखकर उन्हें प्राप्त करने का स्वप्न पालता है, उसके लिए ऑफिस या बैंक से लोन लेते हैं। विदेश की हर चीज को हम अपने देश में और अपने पास देखना चाहते हैं। शराब भी विदेशी चाहता है रतन क्योंकि यह विश्व ग्राम का जमाना है। धरती के टुकड़ों में फर्क नहीं रहा।⁴

बहुराष्ट्रीय कम्पनियों हाइटेक तकनीक, संचार माध्यमों के सैलाब में बहती चली आई आयतित संस्कृति, आचार, व्यवहार, विचार सभी को भ्रष्ट करती हुई आक्रामक उपभोक्तावाद का पर्याय बन रही है। जिसमें आर्थिक स्थिति ही नहीं इतिहास, संस्कृति और समाज तीनों प्रभावित हो रहे हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति के पसरने से 'सैक्स की विकृति' दुर्गति में प्रवेश पा रही है। रवीन्द्र जी ने रतन और सपना की प्रेम कहानी के माध्यम से इस स्थिति को स्पष्ट किया है कि टी. वी. ने कस्बे-छोट शहरों तक किस प्रकार अपसंस्कृति को बढ़ावा दिया है- "ऐसी दोस्ती का अंजाम अब इस छोटे शहर में भी एक अदद सूना कमरा है और एक अदद कंडोम हो गए थे- जिसमें परिवार नियोजन और टी.वी. का भरपूर योगदान था। अब वह जमाना नहीं था कि लड़के-लड़कियाँ मोहल्लों में छतों से नजरों के तीर चलाएँ और मंदिरों में एक-दूसरे से टकरा जाएँ। तब शहर में प्रेमी-प्रेमिका के बीच चुम्बन का एक पराक्रम था। अब प्रेमी ने प्रेमिका का बलात्कार किया। फिर प्रेमिका ने थाने में जाकर रपट लिखाई। लोग इससे खिलखिलाकर हंसते और फिर सहम जाते हैं। शहर को क्या हो गया?"⁵

वर्तमान समय में आर्थिक उदारीकरण ने उपभोक्तावाद, बाजारवाद व्यवस्था को शक्ति प्रदान की है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के फैले जाल ने शिक्षित नवयुवक-युवतियों की आशा-आकांक्षाओं को फँसाया है। नई-नई तकनीक शिक्षा यथा- एम.बी.ए., कम्प्यूटर इंजीनियर, सॉफ्टवेयर इंजीनियर तथा विज्ञापन जैसे क्षेत्र में अपना कैरियर करने लगे। परन्तु कैरियर बनाने की 'दौड़' में यह युवा पीढ़ी संवेदन होकर घर, परिवार, संस्कृति, नैतिकता को तिलांजलि दे रहे हैं। इन्हीं बातों का चित्रण ममता कालिया ने अपने उपन्यास 'दौड़' में अंकित किया है। आज के युवा वर्ग के सामने भूमण्डलीकरण के कारण विश्व के द्वार खुले हैं। पवन का छोटा भाई सघन भी सॉफ्टवेयर कंपनी से बुलावा आने पर ताईवान जाने की तैयारी करता है। पिता राकेश उसे हवाई जहाज के टिकट का इंतजाम कर देते हैं तो वह भी पवन जैसे ही कहता है कि आपका खर्च मैं पहली तनखाह में से चुका दूंगा। वह इतनी आसानी से कहता है मानो वह अपने पिता से नहीं किसी होटल मालिक से कह रहा हो। आज के युवाओं की 'मनी माइंड' सोच से आपसी रिश्तों में तनाव निर्माण हो रहा है। जब सघन के माता-पिता उसे अपने देश में कार-उद्योग स्थापित करने की बात कहकर वापस बुलाना चाहते

हैं, तो सघन अपने पिता से कहता है कि मुझे कम से कम तीस-चालीस लाख की जरूरत होगी, तभी मैं हिन्दुस्तान लौट सकूंगा। सघन पिता से कुछ पैसों का इंतजाम करने के लिए कहता है तब राकेश अपने घर की आर्थिक स्थिति बताते हुए मजबूरी व्यक्त करते हैं। सघन चिढ़कर उन्हें कहता है, "आपने इतने बरसों में क्या किया? दोनों बच्चों का खर्च आपके सिर से उठ गया। घूमने आप जाते नहीं, पिक्चर आप देखते नहीं, दारू आप पीते नहीं, फिर आपके पैसों का क्या हुआ?"⁶

इस प्रकार सघन अपने पिता से पैसों का हिसाब मांगता है। यही सबसे बड़ी त्रासदी है- बाजारवाद, उपभोक्तावाद की। हर कोई चीज, रिश्ता आज पैसों पर तोला जाने लगा है जो मां-बाप अपनी इच्छा-आकांक्षाओं को मारकर एक-एक पैसा जोड़कर बच्चों को पढ़ाते हैं, एम.बी.ए., सॉफ्टवेयर इंजीनियर बनाकर विदेश भेजते हैं, वहीं आगे चलकर अपने माता-पिता से पैसों का हिसाब मांगते हैं। लेखिका ने यह भी दर्शाया है कि आज की युवा पीढ़ी धनोपार्जन और उच्च स्तरीय जीवन-यापन की दौड़ में अपने माता-पिता को अकेला छोड़कर देश-विदेश के अन्यत्र शहरों में स्थापित होते हैं। उपन्यास में कॉलोनी के ही मिस्टर सोनी का दिल का दौरा पड़ने से मृत्यु हो जाती है तो वह अपनी मां से फोन पर ही बात करता है और कहता है, "आप ऐसा कीजिए, इस काम के लिए किसी को बेटा बनाकर दाह-संस्कार करवाइए। मेरे लिए तेरह दिन रूकना मुश्किल होगा।" क्योंकि उसने अमेरिका में देखा था कि शव का मुर्दाघर में रखकर जब बच्चों को फुर्सत मिलती है, तब दाह-संस्कार करवाते हैं। इस पीढ़ी के पास इतनी भी फुर्सत नहीं कि वे माता-पिता का दाह-संस्कार समय पर कर सकें। बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति की यह सबसे बड़ी त्रासदी है।

बाजारवाद की विभीषिका का एक पहलू यह भी है कि आज उपभोक्ता को प्रभावित करने के लिए एक से बढ़कर एक उपाय ढूँढ़ लिये हैं। बाजारवाद में विज्ञापनों की दुनिया सच पर टिकी नहीं है। इसमें झूठ बोला जाता है और झूठ के सहारे चीजों को बेचा जा रहा है। उनमें नैतिकता भी कहीं नहीं है। इसलिए अभिषेक अपनी पत्नी राजुल से कहता है, "सच्चाई तो यह है कि मॉडल लीन भी स्पार्कल इस्तेमाल नहीं करता। वह प्रतिद्वन्दी कम्पनी का टिक्को इस्तेमाल करता है, पर हमें सच्चाई नहीं प्रॉडक्ट बेचनी है।"⁸

वर्तमान युग तकनीकी गुण है। आज समाज पर उपभोक्ता संस्कृति पूर्ण रूप से हावी हो चुकी है। ऐसी स्थिति में विज्ञापनों के माध्यम से समस्त उत्पादों को उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जा रहा है। अनेकानेक कंपनियों में इस बात की होड़ लगी है कि उनका प्रॉडक्ट कैसे अच्छा हो। इसी कारण कभी-कभी छल-कपट का सहारा लेकर लोगों को फँसाया जा रहा है। इन कंपनियों ने नैतिकता को ताक पर रख दिया है।

वैश्विक आर्थिक दबाव में आकर देश ने ढाँचागति परिवर्तन की नीति को स्वीकार किया और आर्थिक उदारीकरण के नाम पर निजीकरण और पूँजीवादी के प्रसार पर भारत ने हस्ताक्षर किये और समाज के आवागमन के रास्ते मुक्त कर दिये। इसी के कारण देश में बहुराष्ट्रीय कॉरपोरेशन का मार्ग प्रशस्त हुआ। उदारीकरण और मुक्त बाजार व्यवस्था के प्रभाव की परिणति को हम सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'मुझे चांद चाहिए' में बखूबी देख सकते हैं। इस उपन्यास में वर्षा वाशिष्ठ मध्यवर्गीय परिवार के सारे अवरोधों के बावजूद एक लड़की का कॉलेज के नाटक में भाग लेना, नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा तक पहुँचना, रंगमंच पर ख्याति प्राप्त करना, अनेक फिल्मों में काम करना, सर्वोत्कृष्ट अभिनेत्री का पुरस्कार पाना, प्रसिद्धि की बुलंदियों पर पहुँचना तथा सफलता का एक-एक पायदान लाघन यह प्रदर्शित करता है कि वर्षा वाशिष्ठ की इन उत्तरोत्तर प्रगति के

पीछे कोई बाजार की शक्ति या पूँजी के शस्त्र काम कर रहे हैं जो उसे बेतहाशा गति प्रदान कर रहे हैं।⁹ वर्षा का हर्ष के प्रति प्रेमभाव पूर्णतः शारीरिक आकर्षण और तदजन्य आनन्द पर अवस्थित होकर आकार ग्रहण करता है— “संभोग भीतर—बाहर को ऐसी निर्मलता, ऐसी स्फूर्ति देने वाला भी हो सकता है, उसने आश्चर्य के साथ सोचा”¹⁰

इस प्रकार वर्षा ‘लव इज ए गुड रिक्लियेशन’¹¹ को महत्त्व देती है। अतः स्पष्ट है कि आधुनिक नारी प्रेम को किसी आदर्शवादी या आध्यात्मिक नज़रिये से न लेकर उपयोगितावादी दृष्टिकोण से लेती है। उसका प्रेम किन्हीं सूक्ष्म या अमूर्त भावनाओं से निरसुत न होकर देह की आँच में से तय कर बाहर आता है। वस्तुतः वर्षा अभिनय जैसे अपने ऊबाऊ और थकाऊ व्यवसाय में ‘रिलेक्स’ और ‘रिक्लियेशन’ का प्रमुख जरिया शराब और यौन—सम्बन्धों में तलाशती है। आधुनिक अर्थों में स्त्री—पुरुष के उन्मुक्त प्रेम—सम्बन्धों के बारे में यह बदला हुआ दृष्टिकोण सामने आ रहा है।

अलका सरावगी ने ‘एक ब्रेक के बाद’ उपन्यास में उत्तर—आधुनिक समय में बाज़ार, विज्ञापन और वस्तु के रूप में व्यक्ति को भी उपयोगितावादी दृष्टि से देखना आदि की सफल प्रस्तुति हुई है। यहाँ हर व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को उपयोगितावादी दृष्टि से देखता है। उपन्यास की शुरुआत से ही दंपती शीतयुद्ध की तरह ठंडे घर्षण की स्थिति में जी रहे हैं, किन्तु इंडियन स्कार्शॉप को बुलंदियों तक पहुंचाने के लिए के.वी. पत्नी का एक वस्तु के रूप में उपयोग करते हैं। रंगनाथन के अनेक हथकण्डों का उपयोग कर वह कंपनी की मार्केटिंग करता है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में कार्बन क्रेडिट के लिए नौकर रामा का उपयोग करता है, जिसमें रामा जैसे कई किसानों का पैरों से चलाने वाला ‘ट्रेडल’ देकर कार्बन क्रेडिट के द्वारा मुनाफा कमा सके। सरकार कम्पनी और किसान सब अपना—अपना फायदा देख रहे हैं। के.वी. को किसी से क्या मतलब और किसी को के.वी. से क्या?¹²

अलका सरावगी, एक ब्रेक के बाद,

ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में बाज़ारवादी व्यूह रचनाएं किस प्रकार भारतीय जनता की जीवन शैली में परिवर्तन लाती है। इस बात पर अलका सरावगी ने प्रकाश डाला है। ‘इस पोस्ट—ग्लोबल दुनिया में जवान दिखना, सुन्दर दिखना, वज़न घटाना, अरबों डॉलरों का कारोबार है। लेकिन कम—से—कम इंडिया में ज़्यादातर लोग यह नहीं चाहेंगे कि किसी को पता चले कि वे इस तरह के कार्यों के लिए पैसे खर्च कर रहे हैं।’¹³ अलका सरावगी ने विज्ञापन को श्रद्धा बरक्स खड़ा किया है। अब श्रद्धा का केन्द्र ईश्वर से बदलकर व्यक्ति को गया है। “रविकान्त के जन्मदिन पर सुबह सात बजे से लोग ‘एंबर डिपार्टमेंटल स्टोर’ के बाहर बीबी—बच्चों सहित लाइन लगाकर खड़े हो गए थे, जैसे तिरुपति बालाजी के दर्शन के लिए खड़े हो।”¹⁴ कार्पोरेट इंडिया बनाम पोंगापंथी भारत में सरावगी के. वी. के माध्यम से स्पष्ट कहलवाती हैं कि खरीदने वाले चाहे खरीदें, हमें तो सिर्फ बेचने से मतलब है। कोई अधविश्वासी हो, तो उससे हमें क्या?

कूल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उपन्यासकारों ने उपभोक्तावादी जीवन की सुखकर अवस्थितियों और आत्मनिष्ठ रुझानों का चित्रण किया और साथ ही इस उद्देश्य का चित्रण किया है कि किस प्रकार उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद ने संस्कृति को अपसंस्कृति में बदल दिया, अर्थक्षेत्र और संस्कृति क्षेत्र एकाकार हो गए हैं। संस्कृति एक उत्पाद बन गई है। पैसे की अन्धी दौड़ में मनुष्य का उपयोगितावाद और उपभोक्तावाद का मोहरा बन कर रह

जाना, घर और परिवार के रिश्तों और माहौल का एक बाजार में तब्दील हो जाना, संसार के नैतिक पतन का एक ‘काउंट डाउन’ प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास ने सम्पूर्ण जीवन—मूल्यों को गहरे संकट में डाल दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ—सूची

1. कृष्णदत्त पालीवाल, उत्तरआधुनिकतावाद की ओर, आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली, पृ. 60 ।
2. सं. मुक्ता, उत्तरआधुनिकता उत्तरसंवाद, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 170
3. लेख— मानव समाज में टेक्नोलॉजी के नियंत्रण, पहल, 50—51, त्रैमासिक भोपाल, 1994, पृ. 195.
4. रवीन्द्र वर्मा : दस बरस का भँवर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृ. 65 ।
5. वहीं, पृ. 162.
6. ममता कालिया : दौड़, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 58.
7. वहीं, पृ. 81
8. वहीं, पृ. 37.
9. सुरेन्द्र वर्मा : मुझे चांद चाहिए, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1998, पृ. 241.
10. वहीं, पृ. 387
11. वहीं, पृ. 387
12. अलका सरावगी : एक ब्रेक के बाद, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, हरियाणा, 2003, पृ. 149
13. वहीं, पृ. 119
14. वहीं, पृ. 68 ।